चतुर्थ अध्याय

:: सूरदास के विनय के पदों का स्वरूप ::

सूरदास के विनय के पदों का स्वरूप --

सूरदास के पदों में पाँच विषय प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं --

१ विनय

२ बालमाधुरी

३ रूपमाधुरी

४ मुरली-माधुरी और

५ भ्रमरगीत ।

इनमें से हमारे अध्ययन का विषय है --' विनय के गीत '

सूरदास के विनय - काव्य की पृष्ठभूमि --

सूरदास ने वल्लभाचार्य से दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व अधिकांश विनय - भक्ति - परक पदों की रचना की थी । जब महाप्रभु से उनकी प्रथम भेंट हुई, तो वल्लभाचार्य की आज्ञा पाकर सूर ने विनय के पद सुनाए । महाप्रभु ने उनसे कहा कि' सूर ह्वै कै ऐसों घिघियात काहे को है, कछू भगवत - लीला वर्णन करि ।' तदुपरान्त महाप्रभु ने सूरदास को भगवल्लीला गान करने का उपदेश दिया विद्वानों का मत है कि सूरदास के विनय सम्बन्धी पद पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के पूर्व के हैं ।

' सूरदास के इन पदों में हृदय की समस्त ग्लानि, दीनता, पश्चाताप, निरीहता, संसार के प्रति विरक्ति, आत्मविस्मृति और सर्वभावेन आत्मसमर्पण ओत-प्रोत है । इन पदों में उनका आत्मनिवेदन अतीव सुन्दर बन पड़ा है ।'[१] सूरदास के' विनय की भावना' के अन्तर्गत छः प्रकार की प्रपत्ति अथवा शरणागति के दर्शन होते हैं । इन के अनुसार सूरदास के विनय के पदों का स्वरूप देखा यथोचित होगा ।

१ भगवान के अनुकूल आचरण

२ भगवान के प्रतिकूल आचरण की निंदा

३ भगवान मेरा उध्दार करेंगे इस प्रकार की दृढ धारणा

४ भगवान को अपना रक्षक मानना

५ समर्पण की भावना

६ कार्पण्य याने दीनता प्रकट करना ।

भगवान के अनुकूल आचरण --

इसमें भक्त अपने इष्टदेव के अनुकूल गुणों को धारण करने का संकल्प करता है । अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए जो पदार्थ अनुकूल है उन्हें ही स्वीकार करता है ।

आत्मा के उत्थान के लिए जहाँ उचित वातावरण मिले उसी क्षेत्र को अच्छा समझकर वहीं जाने का संकल्प सूरदास जी के नीचे लिखे पद में व्यक्त हुआ है --

सुवा चलि ता बन को रस पीजै ।
जा बन राम नाम अमृत रस, स्त्रवन-पात्र भरि लीजै ।
को तेरो पुत्र पिता तू काको, गेहति घर को तेरो ।
काग, सृगाल स्वान को भोजन तू कहै मेरो मेरो ।
बन बारानसि मुकति छेत्र है, चलि ताकों दिखाराउँ [१]
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग जो पाऊँ ।।

इसमें मन को सम्बोधित करते हुए कहा है, " हे मन रूपी तोते । तू चल और उस वन का रस पी जिस वन में राम नाम का अमृत रस है । उसीसे तू अपने कान-रूपी पात्र को भर ले । इस संसार में न तेरा कोई पुत्र है, न तू किसीका पिता है, और न कोई तेरी बहु है । और कौन तेरा घर ? तेरा यह शरीर तो पशुओं का भोजन है । इसलिए तू वाराणसी क्षेत्र चल, जहाँ वह वन मुक्ति का क्षेत्र है, वहाँ तुझे साधु की संगति मिलेगी, जो कि बड़े भाग्य प्राप्त होती है ।

प्रभु-प्रेम को प्रकट करते हुए तथा प्रभु के गुणगान का वर्णन करते हुए सूर ने मन को भ्रमरी की उपमा दी है --

भृंगिनि री,भजि स्याम-कमल-पद जहाँ न निसि कौ त्रास ।
जहँ बिधु भासमान एकै रस,सोइ वारिधि सुख रासि ।

सुनि मधुकरि,भ्रम तजि कुमुदिनि गन,राजीव हरि की आस ।
सूरज प्रेम सिंधु मैं प्रफुल्लित,तहँ चलि करहि निवास ।।[3]

सूरदास कहते हैं, ` हे मन रूपी भ्रमरी । तू भगवान के कमल रूपी चरणों को भज जहाँ रात का भय नहीं होता जहाँ चन्द्रमा सदा एक ही रस में प्रकाशित रहता है । भगवान आनन्द के सागर और सुख की राशि है । यहाँ भक्ति के नव लक्षण केसर के समान हैं । यहाँ पर प्रेम और ज्ञान एकरूप रहते हैं । इसलिए हे भ्रमरी कुमुदिनियों का भ्रम छोड और कमल रूपी भगवान की आशा रख । `

प्रभु के चरण-सरोवर में हमारी आत्मा पवित्र होती है । उसे मुक्तावस्था मिलती है । प्रभु के पास आत्मा-परमात्मा का मधुर मिलन होता है । हमारे सारे पाप नष्ट होते हैं । सूरदास ने चित्त को सखी की उपमा देकर इस प्रकार प्रकट किया है --

चलि सखि उहि सरोवर जाहिं ।
जिहि सरोवर कमल कमला ,रबि बिना बिहँसाहि ।

देखि नीर जो छिल छिलो जग,समुझि कछु मन माहिं ।
सूर क्यों नहिं चलै उडि तहँ,बहुरि उडिबो नाहिं ।।[4]

` हे चित रूपी सखी । चलो उस सरोवर रूपी प्रभू के पास जहाँ बिना सूर्य के ही कमल खिलते हैं । उस आनंद लोक में बिना सूर्य के ही अधिक प्रकाश होता है ।

वहाँ पर आत्मा पवित्र होती है और अपने जीव को मुक्तावस्था मिलती है। वहाँ पर आत्मा और परमात्मा का भी मधुर मिलन होता है। और हमारे सारे पाप भी नष्ट होते है।" इसलिए सूरदास चित्त से कहते है, कि प्रभु के चरण सरोवर के सामने यह संसार बहुत ही छिछला प्रतीत होता है। अत: संसार के आवागमन के चक्कर से मुक्त होने के लिए एक मात्र उपाय है, निरन्तर प्रभु के पास रहना।

प्रभु को घमंड गर्व अच्छा नहीं लगता --

गरब गोबिंदहिं भावत नाहीं।
कैसी करी हिरनकश्यप सों, प्रगट होइ छिन माहीं।
जग जान्मै करतूत कंस की, नरकासुर मार्यो बल-बाहीं।
बरून, बिरंचि, सक्र, सिव, मुनिगन, केतिन हूँ मनसा गहि गाहीं।।
जोबन रूप राज धन धरती, जिय जानहु जैसी जलद की छाँही।
सूरदास हरि भजे न तेई, बिमुख अति अंतकपुर जाहीं।।[5]

प्रभु को घमंड अच्छा नहीं लगता। हिरण्यकश्यप को अपने बल का बड़ा अभिमान था, किन्तु भगवान ने खम्भें से प्रकट होकर उसे फाड़ डाला। कंस के कार्य को सभी जानते हैं। लेकिन प्रभु ने उसकी चोटी पकड़कर उसका अभिमान चूर कर दिया नरकासूर को भगवान ने अपने बाहु बल से मार डाला वरूण, ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर और कितने मुनिगणों को भगवान ने मन से पकड़ा और उनके अभिमान को नष्ट किया। यौवन, रूप, राज्य, धन और पृथ्वी आदि के ऐश्वर्य को समझाना चाहिए, क्योंकि वह अस्थायी है। सूरदास जी कहते हैं " कि जो प्रभु को भक्ति नहीं करते, वे भगवान से विमुख होने के कारण यमराज की पुरी में जाकर कष्ट भोगेंगे।"

भक्त - वत्सलता --

सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु का स्वभाव भक्त-वत्सलता के गुण को धारण करने वाला है। प्रभु अपने भक्तों के कुल, जाति-पाँति आदि की ओर देखते नहीं।

सभी के प्रति वे समान भाव से देखते हैं। वे सबकी प्रीति को ही मानते हैं --

राम भक्तवत्सल निज बानों।
जाति,गोत,कुल नाम,गनत नहिं, रंक होई कै रानों।
सिव - ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु,हौं अजान नहि जानों।
हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं,सो हमता क्यों मानौं ?

जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ,भक्तनि हाथ बिकानौ
राजसूय मैं चरण पखारे स्याम लिए कर पानौ।
रसना एक,अनेक स्याम - गुन, कहँ लगि करौं बखानौ।
सूरदास - प्रभु की महिमा अति,साखी बेद पुरानौ ।।[६]

सूरदास कहते हैं, भक्तवत्सलता ही भगवान का निजी स्वरूप है। भगवान भक्त के प्रति वात्सल्य भाव रखते हैं। वे जाति,गोत्र,कुल तथा नाम आदि का भेदभाव नहीं मानते, चाहे वह राजा हो या रंक हो इसका भी विचार नहीं करते। शिव और ब्रह्मा आदि की कौन जाती है ? इसे कोई भी नहीं जानता। अहंकार की भावना जहाँ - जहाँ होती है,वहाँ प्रभु का सानिध्य नहीं होता। इसलिए इस अहंकार का हमें त्याग करना चाहिए। भक्त प्रल्हाद दैत्यवंश में उत्पन्न हुआ था, लेकिन उसकी रक्षा के लिए भगवान स्तम्भ से प्रकट हुए। प्रभु के भक्तों की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। ध्रुव राजपुत्र थे और विदुर दासी पुत्र थे, लेकिन प्रभु ने दोनों का ही उध्दार किया। इसमें प्रभु ने भेदभाव नहीं किया। अपने भक्त युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ने अपने हाथ में जल लेकर चरण धोये। इसलिए प्रभु के ऐसे अनेक गुण दिखाई देते हैं कि जिनका वर्णन करना असंभव हो जाता है।

प्रभु की दशा अव्यक्त है वे किसीके कुल और शरीर का विचार नहीं करते जैसे --

काहू के कुल तन न बिचारत ।
अविगत की गति कहीं कौन सों, पतित सबनि कों तारत ।
कौन धौं जाति पाँति बिदुर की, जिहि के तुम व्योहारत ।
भोजन करत तुष्ट घर उनके, राज मान मद टारत ।
ओछे जनम करम के ओछे, ओछे ही अनुसारत ।
यहै सुभाव सूर के प्रभु को, भगत बछल प्रत पारत ।। ७

प्रभु किसी के कुल और शरीर का विचार नहीं करते । उनकी दशा अव्यक्त है । उन्होंने सारे पापियों को तारा है । विदुर की कौन जाति-पाँति थी । लेकिन प्रभु ने उसके घर भोजन संतुष्ट होकर खाया और दुर्योधन के मान को टाल दिया जो लोग जन्म-कर्म (दोनों) के नीच है, उन नीचों के साथ वे उनके अनुकूल ही व्यवहार करते हैं ।

प्रभु सभी की प्रीति चाहने वाले हैं । वे सदा ही अपने भक्तों का भला करने वाले हैं । प्रभु के इस स्वभाव का गुणगान सूर ने अपने पदों में इस प्रकार प्रकट किया है --

गोबिंद प्रीति सबनि की मानत ।
जिहि जिहि भाय भगत करैं सेवा, अंतरगत की जानत ।
सबरी कटुक बेर तजि मीठे चाखि गोद भरि ल्याई ।

कौरौ काज चले रिषि सापन, साक पत्र ही अघाए ।
सूरदास करूना निधान प्रभु, जुग-जुग भक्त बढाए ।। ८

प्रभु सबकी प्रीति ही को मानते हैं । जो जिस भाव से उनकी सेवा करता है, वे उसके हृदय की बात जान जाते हैं । इसे सूर ने शबरी, विदुर, और पाण्डवों का उध्दरण देकर मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है । शबरी ने चखकर मीठे बेर इकट्ठे किये और कड़वों को छोड दिया । प्रभु ने उसके जूठन का ध्यान नहीं किया, बल्कि सच्चे भाव को जानकर उन्हें खा लिया । कृष्ण जी विदुर के घर गये और प्रेम -

विठ्ठल विदुर ने उनको केले के छिलके दिये । उन्होंने बड़े आनन्द से केले के छिलके खा लिये । दुर्योधन के कारण ऋषी दुर्वासा पाण्डवों को शाप देने चले थे, पर शाक के पत्ते से ही उनका पेट इतना भरा कि वे चले गये । इसलिए सूरदास कहते हैं कि प्रभु तो करुणानिधान हैं,युग - युग में उन्होंने भक्तों को बढाया है ।

प्रभु दीन - हीन के स्वामी हैं --

श्याम निर्धनों को चाहने वाले हैं । प्रभु दीन - हीनों के स्वामी तथा सच्चे प्रेम का निर्वाह करने वाले हैं । अपने भक्तों के दु:ख दूर करने वाले हैं ।

स्याँम गरीबनि हू के गाहक ।
दीनानाथ हमारे ठाकूर,साँचे प्रीति-निवाहक ।
कहा बिदुर की जाति-पाँति,कुल,प्रेम-प्रीति के लाहक ।
कह पांडव के घर ठकुराई ? अरजुन के रथ-बाहक ।
कहा सुदामा के धन हौ ? तौ सत्य - प्रीति के वाहक ।
सूरदास सठ,तातै हरि भजि आरत के दुख - दाहक ।। [१]

श्रीकृष्ण निर्धनों को ही चाहने वाले हैं । हमारे प्रभु तो दीन-हीनों के स्वामी तथा सच्चे प्रेम का निर्वाह करने वाले हैं । बिदुर की जाति, श्रेणी,तथा कुल किस गिनती के थे ? लेकिन भगवान ने उन्हें ग्रहण किया,पाण्डवों के पास स्वामित्व कहाँ था ? किन्तु वे अर्जुन के रथ के सारथी बने । सुदामा के पास धन कहाँ था ? पर भगवान ने उसके साथ मित्रता स्थापित की । भगवान तो प्रेम तथा भक्ति को ग्रहण करने वाले हैं । इसलिए सूरदास कहते है, ' हे मन ! तुम भगवान का भजन करो, क्योंकि वे दु:ख को दूर करने वाले हैं ।

जैसे तुम गज को पाउँ छुड़ायौ ।
अपने जन कौ दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ ।
जहँ जहँ गाढ परि भक्तनि कौं तहँ तहँ आपु जनायौ ।
भक्ति हेत प्रहलाद उबारयौ द्रौपदि-चीर बढायौ ।
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं,नामदेव घर छायौ ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा,तिहि दारिद्र नसायौ ।। [१०]

" प्रभु तो भक्तों की रक्षा करने वाले तथा दु:ख को नष्ट करने वाले हैं । जैसे ही गज को ग्राह ने पकड़ा तो प्रभु ने उसे छुड़ाया । इस समय प्रभु अपने भक्तों को दु:खी जानकर पैदल ही चले आये थे । जहाँ - जहाँ भक्तों पर विपति पड़ी वहाँ - वहाँ प्रकट होते हुए भक्तों के दु:ख दूर किये । प्रभु ने भक्ति के कारण ही प्रल्हाद की रक्षा की तथा द्रौपदी का चीर बढाया । भक्ति को जानकर ही भगवान विदुर के घर गये थे,तथा नामदेव का घर छाया । सुदामा निर्धन ब्राह्मण था उसका भी दारिद्र उन्होंने नष्ट किया । "

इस प्रकार सूरदास के इन पदों में भगवान के अनुकूल आचरण दिखाई देते हैं ।

भगवान के प्रतिकूल आचरण की निन्दा --

इसमें भक्त अपने इष्टदेव के प्रतिकूल गुणों का त्याग करता है । जो पदार्थ अध्यात्मिक उत्थान के लिए अनुकूल नहीं, प्रतिकूल है,भक्त उनका परित्याग कर देता है । सूरदास जी ने इसे अपने पदों में इस प्रकार व्यक्त किया है --

जो सुख होत गुपालहिं गाऐं ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हैं,कोटिक तीरथ न्हाऐं ।
दिऐं लेत नहिं चारि पदारथ,चरन-कमल चित लाऐं ।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत,नंद-नंदन उर आऐं ।
बंसीवट,वृन्दाबन,जमुना,तजि बैकुंठ न जावै ।।
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि,बहुरि न भव-जल आवै ।। [११]

सूरदास कहते हैं, " जैसा सुख श्रीकृष्ण के गुण गाने से प्राप्त होता है, वैसा सुख जप, तपस्या तथा करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से भी नहीं होता। भगवान के चरणों में मन लग जाने पर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को कोई देने से नहीं लेता। वृन्दावन तथा यमुना को छोड़कर वह विष्णु-लोक भी नहीं जाना चाहता।" सूरदास कहते हैं, " भगवान का स्मरण करते रहने पर फिर इस संसार - सागर में नहीं आना पड़ता। और हमें जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिल जाता है।"

चकई री चलि चरन सरोवर, जहाँ न प्रेम बियोग।
जहाँ भ्रम निसा होति नहिं कबहूँ, सो सायर सुख जोग।।

जिहि सर सखी सहज निति क्रीड़ा, प्रगटित सूरजदास।
अब न सुहाइ विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस।। [१२]

इसमें सूर ने जीव की विषय-चंचल मनोवृत्ति को चकवाकी के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा है, " प्रभु के चरणरूपी सरोवर में पदनख - रवि का आलोक निरन्तर व्याप्त रहता है, अत: वहाँ भ्रमरूपी निशा के कारण होनेवाला वियोग - दु:ख नहीं सहना पड़ता। उस सरोवर में ऋषि - मुनि और देवता, मीन तथा हंस के रूप में निवास करते हैं। वहाँ ज्ञान का कमल सदैव खिला रहता है, माया का चन्द्रमा वहाँ उदित नहीं होता। मोक्षरूपी मोती वहाँ अनायास ही मिल जाता है। वहाँ नित्य रासलीला होती रहती है। सुख के उस महासमुद्र की तुलना में विषयरस से भरा हुआ संसार एक छोटी तलैया - सा प्रतीत होता है। अत: उस चरण सरोवर में ही निवास करना चाहिए।"

A
12015

सूर ने अपने माध्यम से मोहासक्त जीव के मन को धिक्कारते हुए कहा है --

रे मन मूरख, जनम गँवायौ ।
करि अभिमान विषय - रस गीध्यौ स्याम - सरन नहिं आयौ ।
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुन्दर देखि लुभायौ ।
चाखन लाग्यौ रूई गई उड़ि हाथ कछू नहिं आयौ ।
कहा होत अब पछिताएँ पहलै पाप कमायौ ।
कहत सूर भगवंत भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायौ ।। [१३]

इसमें सूर ने सुन्दर प्रतीत होनेवाले संसार की असारता का चित्रण करते हुए तथा अपने मन को धिक्कारते हुए कहा है, कि उसने असार संसार के माया -मोह में पड़कर भगवद्भक्ति नहीं की और जीवन व्यर्थ गँवा दिया। बाहर से आकर्षक दीखने वाला संसार भीतर से उसी प्रकार सारहीन है जैसे -- सेमल का फूल, जिसके लाल रंग से आकर्षित होकर शुक जब उसका आस्वाद लेना चाहता है तब रूई ही हाथ लगती है । जीव भी प्रभु - विमुख होकर विषयासक्ति के फलस्वरूप इसी प्रकार पछताता रहता है ।

सांसारिक माया - मोह का मिथ्यात्व बताते हुए सूरदास ने अपने मन को भगवद्भक्ति की ओर प्रेरित करने का प्रयास निम्न पद में व्यक्त किया है ।

मन तोसौं कित्ती कही समुझाइ
नंद - नंदन के चरन - कमल भजि, तजि पाखण्ड - चतुराइ ।।
\+ + + + +
जनमत - मरत बहुत जुग बीते, अजहूँ लाज न आइ ।
सूरदास भगवंत - भजन बिनु, जैहै जनम गँवाइ ।। [१४]

इसमें सूरदास जी अपने माध्यम से जीवमात्र के मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि संसार के सारे सम्बन्ध और सुख-साधन क्षण भंगुर है । और इन्हीं में

आसक्ति रखने के कारण जीव को बार-बार जन्म-मरण के कष्ट सहने पड़ते हैं। जीवन को सार्थक करने का एकमात्र उपाय है, भगवद्भक्ति करना।

सुवा चलि ता बन को रस पीजै।
जा बन राम नाम अमृत रस, स्त्रवन - पात्र भरि लीजै।
को तेरौ पुत्र पिता तू काकौ, गेहनि घर को तेरौ।
काग,सृगाल स्वान को भोजन तू कहै मेरौ मेरौ।
बन बारानसि मुकति क्षेत्र है,चलि ताकौ दिखराऊँ।
सूरदास साधुनि की संगति,बड़े भाग जो पाऊँ ।।[१५]

सूर का कहना है कि जीव रुपी शुक को उस वन में निवास करना चाहिए जहाँ राम नाम का अमृत पीने को मिले और सत्संगत - लाभ हो। सांसारिक और दैहिक आसक्तियाँ मिथ्या हैं, अतः उनके मोह में पड़ना उचित नहीं।

धोखै ही धोखै डहकायौ।
समुझि न परी विषौ रस गीधौ,हरि हीरा घर माँझ गमायौ।

ज्यौं कपि डोर बाँधि बाजगीर,कन कन को चौहटे नचायौ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु,काल-ब्याल पै जाति डसायौ ।।[१६]

हे मन ! तू संसार के धोखे - धोखे में ही पड़ा हुआ ठगा गया। तुझे समझ नहीं पड़ा,तू सांसारिक विषयों के रस में गीध की भांति चिपटा रहा और तूने हरि जैसा हीरा घर में ही खो दिया। जिस प्रकार हिरन पृथ्वी में जल देखकर चारों ओर दौड़ता है, पर उसकी प्यास नहीं बुझती,उसी प्रकार मनुष्य भी संसार में सुख पाने के लिए दौड़ता फिरता है,किन्तु उसे सुख नहीं मिलता। अनेक बार जन्म लेकर मनुष्य अनेक प्रकार के कर्म करता है और उन्हीं कर्मों से अपने - आप बँधा रहता है। जिस प्रकार तोता सेमल के वृक्ष से रात-दिन आशा रखता है, किन्तु बाद में जब उस फूल

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

को चखने के लिए चोंच मारता है तो उसमें से रूई उड़ जाती है और बुखार - सा कष्ट होता है। जैसे बन्दर मदारी की डोर में बाँधकर दाने - दाने के लिए बाजार और चौराहों पर नाचता फिरता है, उसी प्रकार मनुष्य भी संसार में निराश घूमता है, सांसारिक कार्यो में बेगार करता और कष्ट पाता है।

जनमु सिरानौ अटकै अटकै।
राज काज सुत बित की डोरी, बिनु बिवेक फिरयौ भटकै।
+ + + + +
सब जंजालु सु इंद्रजाल सम, ज्यौं बाजगीर नटकै।
सूरदास सोभा न जोभियति पिय,बिहूनि धनि भटकै ।।[२७]

" सांसारिक विषयों में फँसा हुआ जीवन व्यतीत हो गया राज, काज पुत्र और धन की डोरी में बँधा हुआ मनुष्य विवेकहीन होकर भटकता फिरा। मोह का जो कठिन पर्दा पड़ा है, वह किसी प्रकार चटकाकर तोड़ा नहीं जा सकता। न तो हमने भगवान का भजन किया और न हमें सांसारिक विषयों से ही सन्तोष हुआ, हम तो बीच ही में लटके रह गये। यह संसार का सारा जंजाल नट बाजीगर के जादू की तरह है।" सूरदास जी कहते हैं, " जो स्त्री अपने पति से अलग होकर भटकती है, उसे शोभा नहीं मिलती। इसी प्रकार हम अपने परमेश्वर से अलग होकर सांसारिक विषयों में भटक रहे हैं। फिर हमे सुख - शांति कैसे मिल सकती है।"

हरिविमुख की निन्दा --

जो लोग हरिविमुख रहते है उनकी निन्दा करनी चाहिए। भगवान के स्मरण करने के लिए हमें इन दुष्ट लोगों का परित्याग करना चाहिए सूर ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है --

अचंभौ इन लोगनि कौ आवै ।
छाँडि स्याम - नाम - अम्रित फल, माया - विष फल भावै ।
\+ + + + +
मृग तृष्ना आचार - जगत जल, ता संग मन ललचावै ।
कहतु जु सूरदास संतनि मिलि हरि जस काहे न गावै ।। ४८

सूरदास कहते है ' माया ग्रस्त लोगों को देखकर आश्चर्य होता है, कि वे प्रभु के नाम रुपी अमरता प्रदान करने वाले फल का परित्याग करके माया रूपी विष - फल को पसन्द करते हैं । ये मूर्ख लोग हरिभक्त की निन्दा करते हैं । और शरीर में भस्म रमाते हैं । इन लोगों का मन मानसरोवर के तट का परित्याग करके कौवों के तालाब में स्नान करता है । ये मूर्ख अपने पैरों के नीचे की जलन को नहीं जानते । घर में लगी हुई आग को छोडकर धूरे की भाग बुझाते हैं । सांसारिक बाह्याचार मृग-तृष्णा के जल के समान है, किन्तु मूर्ख मानव हरि विमुख होकर इस संसार के पीछे लगता है । ' सूर का कहना है, ' इन लोगों को भगवान का यशोगान करना चाहिए । '

प्रभु के स्मरण के लिए तथा उनकी भक्ति के लिए दुष्टों का त्याग करना आवश्यक है , क्योंकि दुष्टों का स्वभाव काले कम्बल जैसा होता हैं ।

छाँडी मन, हरि बिमुखनि कौ संग ।
जिनकैं संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग ।
\+ + + +
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग ।
सूरदास कारि कामरि पै, चढत न दूजौ रंग ।। ४९

सूरदास कहते हैं, ' हे मन । दुष्टों का साथ छोड दो । उनके साथ रहने से दुर्बुध्दि उत्पन्न होती है तथा भगवान के भजन में बाधा पडती है । दुष्टों का स्वभाव बदलने से भी बदला नहीं जाता जैसे कि, साँप को दूध पिलाने से क्या लाभ ? इससे वह अपना विष नहीं छोडता । कौवे को कपूर चुगाने तथा कुत्ते को गंगा

में नहलाने से क्या लाभ होता है ? वे पुन: अभक्ष्य - भक्षण करते हैं । गधे को सुगन्धित लेप करने तथा बन्दर के अंगों में आभूषण पहनाने से क्या होता है ? हाथी को नदी में नहलाने से क्या होता है ? वह पुन: अपना वही ढंग अपनाता है । पतित रूपी पत्थर सदुपदेश रूपी बाणों से प्रभावित नहीं हो सकता । उसे प्रभावित करने की चेष्टा में व्यर्थ ही तरकश खाली होता है । " सूरदास कहते हैं, " काले कम्बल पर दूसरा रंग नहीं चढता । इसी प्रकार दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य पर भी अच्छी बातों का प्रभाव नहीं पडता, अत: उनका परित्याग कर देना चाहिये । "

संसार ,माय,लोभ - मोह आदि सब कुछ झूठ है । और इसे त्यागकर ही हमें भगवद् भक्ति करनी चाहिए । सूर ने इसे मन के द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया है ---

> भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ ।
> बालापन खेलतहीं खोयौ, तरूनाई गरबानौ ।
> \+ + + +
> लोभ - मोह तैं चेत्यौ नाहिं, सुपने ज्यों डहकानौ ।
> बिरध भऐ कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि - धुनि पछितानौ ।।
> सूरदास भगवंत - भजन-बिनु,जप कै हाथ बिकानौ ।। [२०]

सूरदास कहते हैं, ' हे मन । जीवन बीत चला भक्ति कब करोगे ? बचपन खेलने में ही खो दिया, युवावस्था में गर्व से भर गये । हे अधम,माया के अनेक प्रपंच करने पर भी तुम्हारी तृप्ति नहीं होई । अनेक उपायों से ऐश्वर्य जोडा, जिसे राजा से लेकर रंक तक कोई नहीं ले जा सका । पुत्र, धन, स्त्री आदि की आसक्ति में पडे रहे और उनसे सुख की झूठी आशा के भुलावे में आ गये । लोभ मोह में तुम स्वप्न के - से झूठे व्यवहारों में पडकर ठगे गये । अब वृध्द होने पर जब कफ ने कण्ठ अवरूध्द कर दिया, सिर पीट - पीट कर पछताने लगे । जीवन के इन तीनों पनों को भगवद् - भक्ति के बिना व्यर्थ ही नष्ट किया । भगवद् - भक्ति के लिए संसार, माया, मोह इन सभी को त्यागना चाहिए । "

अंत में सूर ने दीन होकर प्रभु के पास प्रार्थना की है, " संसार के इस माया, लोभ - मोह से हमें मुक्त कर दीजिए। माया हमें भ्रम में डाल देती है। और आपका भजन नहीं करने देती --

बिनती सुनो दीन की चित दै, कैसे तवगुन गावै ।।
माया नटिनि लकुटि कर लीन्हें, कोटिक नाच नचावै ।।
लोभ लागि लै डोलत दर-दर, नाना स्वांग करावै ।
तुमसौ कपट करावत प्रभुजी, मेरी बुध्दि भ्रमावै ।।

मेरे तौ तुम ही पति, तुम गति, तुम समान को पावै ।
सूरदास प्रभु तुम्हारी कृपा बिनु, को मो दु:ख न सिरावै ।। [२८]

सूरदास जी भगवान से कह रहे हैं, " हे प्रभु। इस दीन - हीन जन की प्रार्थना है, जिसे आप ध्यान दे कर सुन लें। वह प्रार्थना यह है कि मैं माया के मोह से ऐसे संकट में पड गया हूँ कि आपका गुणगान नहीं कर सका। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता कि कैसे यह कार्य करूँ ? मैं माया से छुटकारा पाना चाहता हूँ, किन्तु मेरा सारा प्रयास व्यर्थ हो जाता है। माया रूपी नटिनी हाथ में लकुटी ले कर उसके इशारे से मुझे नाना भाँति के नाच नचाती रहती है। और मैं भी नाचता ही जा रहा हूँ। इस माया का पचडा ऐसा है कि यह मन में लोभ - बुध्दि उत्पन्न करके दर - दर भटकाती रहती है और अर्थ प्राप्ति के लिए तरह-तरह के स्वांग कराती रहती है। " सूर कहते हैं, " माया ने मेरी बुध्दि को इतना भ्रष्ट कर दिया है कि मैं आपसे भी कपट भाव करने लगा हूँ। माया मन में तरह - तरह की अभिलाषाएँ उत्पन्न कर देती है, और व्यर्थ में मुझे रात भर जगाती है। माया ही हमें अज्ञानान्धकार में ले जा रक मन को भरमाती रहती है। माया आत्मा को मोहित कर पाप के रास्ते पर ढकेल देती है। माया जीव को प्रभु से हटाती है इसलिए उसकी निन्दा सभी भक्तों ने की है। "

गोस्वामी जी ने माया को नर्तकी कहा है --

' माया खलु नर्तकी बिचारी ।' यह नर्तकी स्वयं ही नृत्य नहीं करती है, नचाती भी है ।

कबीरदास ने भी कहा है कि --

' माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।'

इस प्रकार सूरदास जी के इन पदों से यह स्पष्ट होता है कि संसार, माया, लोभ - मोह आदि सभी चीजें प्रभु - प्रेम में बाधा डालने वाली हैं । अत: हमें इन सभी चीजों का त्याग करना चाहिए । भगवान का स्मरण करने के लिये ही इन चीजों का त्याग आवश्यक है । भगवान के प्रतिकूल आचरण की निन्दा के अंतर्गत सूर के इन सभी पदों में ये सारे भाव यथायोग्य दिखाई देते हैं ।

भगवान मेरा उध्दार करेंगे इस प्रकार की दृढ धारणा --

भक्त इसमें यह दृढ धारणा व्यक्त करता है कि भगवान उसका उध्दार अवश्य करेंगा ही । सूरदास जी ने इसे अपने पदों में बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है ।

सूर का कहना है कि हम जब भगवान को शरण जाते हैं, तो वे हमारा उध्दार अवश्य करते हैं जैसे ---

सरन गए को को न उबारयौ ।
जहाँ जहाँ भारी परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहां संभारयौ ।
\+ + + + +
ग्राह ग्रसत गज को जल भीतर, नाम लेत वाको दुख टारयौ ।
सूर स्याम बिन और करै की, रंगभूमि में कंस पछारयौ ।। २२

' भगवान ने शरण में आये हुए किसका उध्दार नहीं किया ? जब भक्तों पर विपत्ति पडी भगवान ने तत्क्षण सुदर्शन चक्र संभाला । भगवान अंबरीष पर प्रसन्न हुए तथा उन्होंने दुर्वासा के क्रोध का निवारण किया । ग्वालों के हित के लिए

गोवर्धन पर्वत को धारण किया तथा इन्द्र का गर्वहरण किया । भक्त प्रल्हाद पर कृपा करते हुए भगवान ने खंभे को फाड़कर हिरण्यकश्यप का संहार किया । कृपालु स्वामी ने नृसिंह रूप धारण कर क्षण - मात्र में ही उसके हृदय को नखों से विदीर्ण कर डाला । ग्राह द्वारा ग्रस्त गजराज के नाम लेते ही भगवान ने उसके कष्टों का निवारण किया । रंगभूमि में कंस को मार डाला । " सूर कहते हैं, " भगवान के बिना कौन ऐसा कार्य करता है । "

> जे जन सरन भजे बनवारी ।
> ते ते सखि लिए जग जीवन, जहाँ - जहाँ विपति बिचारी ।
>
> अपनो जानि भभीषन थाप्यो, रावण कुटम सहित संघारी ।
> राख्यो गोकुल बहुत विधन ते, कर नख पर गोबरधन धारो ।। [२३]

सूरदास कहते हैं, " जिन लोगों ने भगवान की शरण ली उन सभी का उध्दार भगवान ने किया है । प्रल्हाद को संकट से उबार लिया और हिरण्यकश्यप को नाखूनों से फाड़ डाला । दुर्योधन की सभा में द्रौपदी की साड़ी उतरने के समय भगवान ने उसकी लाज बचाई । अपना समझकर विभीषण को राज्य पर जमा दिया और रावण को सकुटुम्ब मार दिया । अपने हाथ के नख पर गोवर्धन को धारण करके गोकुल की रक्षा की । अजामिल अपने बेटे को बुला रहा था, उसे भी तार दिया तोते को पढाने वाली वेश्या को भी भगवान ने तार दिया ।

<u>पापियों का उध्दार करने वाले प्रभु</u> --

भक्त चाहे पापी हो नीच हो, भगवान ने उनका भी उध्दार किया है । सूरदास जी ने कहा है कि प्रभु अपने भक्तों का उध्दार करने में कुल जाति-पाँति, उच्च - नीच, पाप - पुण्य आदि की ओर नहीं देखते । प्रभु के इस स्वभाव को सूर ने अपने पदों में शानदार तरीके से प्रकट किया है --

काहु के कुल तनन विचारत ।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत ।
कौन जाति अरू पाँति बिदुर की, ताही के पग धारत ।
भोजन करत माँगि घर उनके, राज मान मद टारत ।
ऐसे जनम-करम के ओछे,ओछति हूँ ब्यौहारत ।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त बछल प्रन पारत ।। [२४]

" भक्तों का उध्दार करने में भगवान किसी के कुल की ओर ध्यान नहीं देते । भगवान की लीला अकथनीय है । वे व्याध और अजामिल जैसे पापियों को भी तारते हैं । विदुर की जाति तथा श्रेणी कौन बडी ऊँची थी ? किन्तु भगवान उनके यहाँ पधारे और उनके घर उन्होंने माँग कर भोजन किया और दुर्योधन के सम्मान को ठुकरा दिया । इस प्रकार जो जन्म तथा कर्म से हीन है, उन छोटों के साथ ही वे सम्बन्ध रखते हैं । प्रभु का यही स्वभाव भक्त - वत्सलता के प्रण का पालन करता है । "

सूर कहते है, कि " हमारे प्रभु तो समदर्शी है, और वे अपने भक्तों के प्रति समभाव रखते हैं । भक्त चाहे पापी हो,नीच हो, दीन - हीन हो प्रभु ने सभी प्रकार के भक्तों का उध्दार किया है । प्रभु का यह गुण बहुत ही अनमोल है । " सूरदास प्रभु के पास प्राथना करते हैं, कि " हे प्रभु । मैं तो पापी हूँ, नीच हूँ और आप को तो पापियों का उध्दार करने की सनक है, इसलिए आप ही मेरा उध्दार कर सक्ते हैं । " जैसे ---

प्रभु मेरे औगुन चित न धरौ ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारौ,अपने पनहिं करौ ।।
इक लोहा पूजा में राखत,इक घर बधिक परयो ।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत,कंचन करत खरौ ।।
इक नदिया,इक नार कहावत,मैलो नीर भरौ ।
जब मिलिकै दोऊ एक बरन भए,सुरसरि नाम परौ ।।
एक जीव,एक ब्रह्म कहावत,सूर स्याम झगरौ ।।
अबकी बेरि मोहिं पार उतारौ,नहिं पन जात टरौ ।। [२५]

सूरदास जी कहते है," हे प्रभु मेरे दोषों का मेरे अपराधों का ख्याल मत कीजिए। आप तो समदर्शी है, बुरे भले सब आपकी निगाह में एक से हैं। इसलिए भले ही मैं अपराधी हूँ, बुरा हूँ लेकिन आप चाहे तो मेरा उध्दार कर सकते है, मुझे भवसागर से पार उतार सकते हैं। आप अपने प्रण का निर्वाह कीजिए। पारस पत्थर के लिए जैसे हर प्रकार का लोहा एक ही समान होता है, वह अपने स्पर्श से हर तरह के लोहे को चाहे वह पूजा के काम में आता हो या व्याधों के यहाँ पशुओं की हत्या करने के काम में आता हो, खरा सोना बना देता है। वैसे ही आपकी कृपा मात्र से भले, बरे सब का उध्दार हो सकता है। मतलब यह है कि जब आपका यह स्वभाव ही है तो मेरे अपराधों की ओर ध्यान न देकर आप मेरा उध्दार कर दे।"

सूरदास जी फिर कहते है," जिस प्रकार गन्दे जल वाले नाले का जल बडी नदी में मिल कर स्वच्छ जल का रूप धारण कर,अन्तत: गंगा कहलाता है, इसलिए हे प्रभु। आपसे मेरा यही आग्रह है कि मैं चाहे जितना भी पापी, अपराधी हूँ आप इस बार मेरा उध्दार कर दे। नहीं तो समदर्शी होने की आपने जो प्रतिज्ञा कर रखी है वह टूट जायेगी।"

प्रभु मेरे गुन अवगुन न बिचारो।
बहियो लाज सरन आए की, रबि सुत त्रास निवारो

तुम सरबग्य सब ही बिधि समरथ,असरत सरन मुरारो
मोह - समुद्र सूर बूडतु है,लोजै भुजा पसारो।।[२६]

सूर कहते है," हे प्रभु। मेरे अवगुणों का विचार न कीजिए। आप शरणागत की लाज रखिए और यमराज के भय से मुझे बचाइए। मैंने योग, यज्ञ, जप-तप नहीं किया, मैंने वेदों का पाठ भी नहीं किया। जिस प्रकार कुत्ता जूठन के लालच में पडा रहता है, उसी प्रकार मैं भी संसार के लालच में पडा हूँ। और कहीं मैंने अपना चित नहीं लगाया। जिन - जिन योनियों में भटका,सर्वत्र ही उसी प्रकार लगा रहा। काम,क्रोध,मद,लोभ में पडा हुआ सांसारिक सुखरूपी विष खाता

रहा । मैं तो कपटी, कंजूस, कुचील और कुदर्शन हूँ और बड़ा अपराधी हूँ । हे प्रभु । आप तो सर्वेश्वर हैं, अनन्त दयासागर हैं, पापों से छुड़ाने वाले तथा अशरण को शरण देने वाले हैं । इसलिए हे प्रभु । मुझे संसार के मोह सागर से बचाकर मेरा उध्दार कीजिए ।"

भगवान को अपना रक्षक मानना --

"भक्त को अपनी कठिन से कठिन परिस्थिति में यह विश्वास रहता है कि प्रभु उसकी रक्षा करेंगे । संसार में माता, पिता, बन्धु, पुत्र, कलत्र, सम्बन्धी - सब साथ छोड़ दें, विश्वासघाती बन बैठे, पर प्रभु साथ नहीं छोड़ेगा, वह विश्वासघात नहीं करेगा यह विश्वास जीवन - यात्रा में भक्त के लिए सम्बल का कार्य करता है ।"[२७] सूर की रचनाओं में रक्षा का यह दृढ विश्वास विद्यमान है --

कहा कमी जाकें राम धनी ।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-विधान जाकी मौज धनी ।
अर्थ, धर्म, अरू काम, मोक्ष फल, चारि पदारथ देत गनी ।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी ।
कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी ।
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै, ज्यों भुवंग-सिर रहत मनी ।
आनंद-मगन राम-गुन गावै, दुख-संताप की काटि तनी ।
सूर कहत जे भजत राम कौं, तिनसौं हरि सौं सदा बनी ।।[२८]

"जिसके देने वाले भगवान धनी हैं उसे किस बात की कमी है ? वे तो मन की इच्छा को पूर्ण करने वाले हैं, वे सुख के घर हैं । वहाँ सब प्रकार का आनन्द है । वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों के देने वाले हैं । उनके सेवक तो इन्द्र जैसे हैं, फिर बेचारे मनुष्य की क्या गिनती ? उस कंजूस के धन की गिनती ही क्या जो मेरा - मेरा करता है, न खाता है, न खर्च करता है । वह तो उस सर्प की भाँति है, जो मणि धारण करता है, पर न उसका उपयोग करता है और न औरों को

देता है । व्यक्ति को चाहिए कि आनन्द में मग्न होकर भगवान राम का गुणगान गावे, जिससे दुःख और कष्ट दूर हो जाते हैं । सूरदास जी कहते हैं, जो भगवान को भजते हैं उनको भगवान सदैव चाहते हैं ।

सूरदास कहते हैं कि भगवान का भजन करने से और उसकी शरण में जाने से सबका उध्दार होता है । और भगवान अपने भक्तों की रक्षा भी करता है ।

जाकों मनमोहन अंग करै ।
ताको केस खसै नहि सिर तैं, जो जग बैर परै ।
+ + + +
जाको बिरद है गर्व - प्रहारी, सो कैसे बिसरै ।
सूरदास भगवंत - भजन करि, सरन गए उबरै ।। [२९]

सूरदास कहते हैं, जिसको भगवान कृष्ण अपना लें उसका बाल भी बाँका नहीं हो सकता, चाहे सारा संसार उसका बैरी हो । हिरण्यकश्यप ने भक्त प्रल्हाद पर अनेक प्रहार किये, लेकिन प्रल्हाद तनिक भी नहीं डरे आज तक उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव जी आकाश में अटल हैं । द्रौपदी की लज्जा भगवान ने बचाई, भले ही दुर्योधन ने उसका चीर हरना चाहा । वस्त्रों की धारा इतनी बढी कि दुर्योधन का मान भंग हो गया । इन्द्र ब्रज पर क्रुध्द हुआ पर कुछ न कर सका । गोवर्धन पहाड को उंगली पर धारण करके कृष्ण ने ब्रज के लोगों की रक्षा कर ली । प्रभु का यश ही यही है कि वे अभिमान को नष्ट करनेवाले तथा अपने भक्तों के रक्षण करने वाले हैं ।

मोहन के मुख ऊपर वारी ।
देखत नैन सबै सुख उपजात, बार बार तातैं बलिहारी ।
+ + + +
राखी लाज समाज माहि जब, नाथ नाथ द्रौपदी पुकारी ।
तीनि लोक के ताप निवारण, सूर स्याम सेवक - सुखकारी ।। [30]

सूरदास कहते हैं, कृष्ण के मुख पर मैं निछावर हूं । उनके नेत्रों को देखकर सभी प्रसन्न होते हैं, हम बार - बार बलिहारी जाते हैं । ब्रह्मा ने गाय के बछडों

को हर लिया था तब उन्हें भगवान ने तुरन्त ही ला दिया । इन्द्र ने ब्रज पर कोप किया और ब्रज पर भयंकर वर्षा की तब प्रभु ने गोवर्धन उठाकर ब्रज की रक्षा की । जब द्रौपदी ने कौरव - सभा में भगवान को पुकारा, तो चीर बढ़ाकर भगवान ने उसकी लाज बचाई । ' सूरदास जी कहते हैं, ' प्रभु तीनों लोकों के दु:ख को दूर करने वाले और सेवकों को सुख देने वाले हैं । '

जब - जब दीननि कठिन परी ।
जानत हौं करूनामय जन कौं तब - तब सुगम करी ।
सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी ।
सुमिरत पट कौ कोट बढ़यौ तब,दुख - सागर उबरी ।
\+ \+ \+ \+
तब - तब रच्छा करी भगत पर जब जब विपति परी ।
महामोह मैं परयौ सूर प्रभु, काहैं सुधि बिसरी ? ।।[३१]

सूर ने इस पद में कृष्ण की रक्षणात्मक तात्परता एवं शक्ति का विवरण प्रस्तुत करते हुए आत्म-निवेदन किया है और अपने आराध्य को दीन बन्धुता और भक्त के विपत्ति-निवारण की तत्परता का गुणगान करते हुए द्रौपदी , गज आदि कथा प्रसंगों का उध्दरण दिया है --

' जुए में जब युधिष्ठिर द्रौपदी को हार गये तब दु:शासन उसे बलात् सभा-भवन में खींच लाया और उसने द्रौपदी को नंगी करना चाहा । द्रौपदी ने भगवान कृष्ण का स्मरण किया । भगवान ने द्रौपदी के चीर को इतना बढ़ा लिया कि दु:शासन खींचता-खींचता थक गया । वह नंगी नहीं हुई । उसकी लज्जा रह गयी । '

द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भस्थ बालक पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके उसे गर्भ में ही मार डाला था । भगवान श्रीकृष्ण ने इस बालक को जीवित किया और इसका नाम परीक्षित रखा ।

कहा जाता है कि जिस समय पाण्डव वनवास कर रहे थे, महर्षि दुर्वासा उनके

यहाँ शिष्यों के साथ पधारे पाण्डव भोजन कर थे। द्रौपदी चिन्तित हुई। वे स्वयं भोजन कर चुकी थीं। उन्होंने कृष्ण का स्मरण किया। भगवान शीघ्र उपस्थित हुए उन्होंने द्रौपदी से भोजन पात्र देखने को कहा। उसमें शाक का एक कण था। भगवान ने उसी का भोजन किया। उनके भोजन करते ही सारे संसार के लोगों ने अनुभव किया कि वे भोजन करके तृप्त हुए।

जल में जब गज को ग्राह ने पकड़ा था तब गजराज ने कृष्ण का स्मरण किया। तब प्रभु ने गज की ग्राह के पकड़ से छुटका की। इस प्रकार सूरदास भी प्रभु से कहते हैं, हे प्रभु। आपने अनेक भक्तों का रक्षण किया, लेकिन आप ने तो मुझे भुला दिया इसलिए हे प्रभु। मेरा रक्षण करने की जिम्मेदारी आप की ही है।'

सूर ने सेव्य-सेवक सम्बन्ध के आधार पर अपने आराध्य की उदारता, प्रतिज्ञापूर्ति एवं सावधानता का वर्णन इस प्रकार किया है --

हरि सौं ठाकुर और न जन कौं।
जिहिं जिहिं विधि सेवक सुख पावै, तिहि विधि राखत मनकौ।।
\+ \+ \+ \+ \+
संकट परैं तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौं।
कोटिक करैं एक नहिं मानैं सूर महा कृतधन कौं।।[32]

सूर का कहना है, " कृष्ण अपने सेवकों
अथवा भक्तों का सर्वांगीण और निरन्तर ध्यान रखते हैं। वे उनके मन को खिन्न नहीं होने देते। अपनी प्रतिज्ञा तो वे पूरी करते ही हैं, भक्तों के भी प्राण की लाज निबाहते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ स्वामी हैं जो उपकार करके भूल जाते हैं।"

ईश्वर - कृपा का माहात्म्य का वर्णन करते हुए सूरदास कहते है --

अबकैं राखि लेहु भगवान।
अब अनाथ बैठ्यौ द्रुमडरिया, पारधि साधे बान।।
याकैं डर भाज्यौं हौं, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारैं प्रान।।
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय जय कृपानिधान ।।[32]

जीव प्रभु से कहता है, हे प्रभु ! अब मेरी रक्षा कीजिए । मैं अनाथ पेड की डाल पर बैठे हुए पक्षी की भाँति हूँ । नीचे बहेलिया तीर चढाये हुए है इसके डर से भाग जाना चाहता हूँ किन्तु उपर बाज पंक्षी मुझे मार डालने के लिए तैयार है । हे प्रभु दोनों ओर मेरे प्राण संकट में है । अब मेरे प्राणों की रक्षा हे भगवान ! आपके सिवा अन्य कौन करेगा ? जैसे ही मैंने हे प्रभु ! आपका स्मरण किया, आप मेरी सहायता के लिये आये । धनुष्य पर बाण चढाकर मुझे मारने के लिए तैयार व्याध को साँप ने काटा । व्याध के बाण का मुझ पर लगाया हुआ निशान चूक गया । धनुष्य से बाण छूटा और ऊपर मुझे खाने को ताक में उडनेवाले बाज पंक्षी को जा लगा । इस प्रकार हे प्रभु ! आप शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं । आपने साँप द्वारा कटवाकर व्याध का निशाना चुकवाया और बाज को भी मार दिया भक्त का आपने रक्षण किया । हे कृष्णा के सागर भगवान ! आपकी जय हो ।

समर्पण की भावना --

आत्म समर्पण द्वारा भक्त अपने आपको प्रभु के हाथों में सौंप देता है जैसे --

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उडि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै ।
कमल नैन को छाँडि महातम, आन देव को ध्यावै ।
विद्यमान गंगा तट प्यासो, दुरमति कूप खनावै ।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल पावै ।।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।[34]

सूरदास कहते हैं, हे प्रभु ! मेरा मन आप को छोडकर और कहाँ शांति पा सकता है ? जिस प्रकार जहाज का पक्षी फिर जहाज पर ही आता है, क्योंकि चारों ओर पानी ही पानी होता है इसी प्रकार मुझे भी और कहीं शरण नही

है। कमल के समान नेत्र वाले भगवान कृष्ण को छोड़कर अन्य किसी देवता का ध्यान करना इस प्रकार है, जैसे गंगा के होते हुए भी उसके तट का कोइ विपरीत बुध्दिवाला प्यासा कुँआ खोदे। प्रभु की कृपा से जिस भ्रमरने एक बार आम्र फल के रस का स्वाद चख लिया, वह कडुवे करील का रस कैसे चखेगा ? हर मनोकामना पूर्ण करनेवाली कामधेनु को छोड़कर कौन मूर्ख बकरी का दूध पीयेगा ? तात्पर्य एक बार भगवद् भक्ति के रस का स्वाद चखने पर कौन मूर्ख सांसारिक नश्वर सुख पाना चाहेगा ?

माधव जू। यह मेरी इक गाइ।
अब आजु तों आप आगे देई लै आइये चराइ।।

निधरक रहौं सूर के स्वामी, जन्म न पाऊँ फेरि।
मै ममता रुचि सौं जदुराई, पहिले लेऊँ निबेरी।। [३५]

सूरदास जी कहते हैं, "हे माधव। मेरी यह एक गाय है जिसे मैं आपके सुपुर्द इसलिए कर रहा हूँ कि आप उसे चारा लायें। यह बड़ी उच्छृंखल है, कितना भी इसे रोके यह गलत रास्ते पर ही जाती है। मेरा मन सहज ही पाप की ओर बढ़ता है। यह सारे दिन-रात वेद रूपी गन्ने के वन को उखाड़ती है अर्थात वेद में बताए हुए धर्म-मार्ग का उच्छेदन करती है। अत: निवेदन है कि कृपा करके हे गोकुल के स्वामी। अपने गैयों के झुंड में इसे भी मिला लें। जब मै आपके यह वचन सुनूँगा कि आपने इसे अपने गोधन में ले लिया है तो मैं निश्चिंत होकर सो रहूँगा। सूरदास जी कहते हैं, "हे प्रभु। आपकी स्वीकृति पर मैं निश्चिंत हो जाऊँगा। आप अपना मन फिर न बदलें। हमारे मन और उसके सांसारिक मोह को आप ही प्यार से सांसारिक वस्तुओं की ओर से लौटा लें। सूर ने शब्द को मन के लिए प्रयुक्त किया है। गो का अर्थ है इन्द्रिय। इन्द्रियों का प्रेरक मन है। अत: मन के लिए गो का प्रयोग अनुचित नहीं है। फिर गो या पशु - प्रवृत्ति से मतलब है चंचलता से और मन सहज ही चंचल होता है।" इसलिए यहाँ सूर ने इस चंचल को ही नियंत्रित करने के लिए भगवान से प्रार्थना की है। भगवान को तन, मन कर्म समर्पण करते हुए सूरदास प्रभु के पास बिनती करते हुए कहते हैं, "हे भगवान आप तो मुझे ऐसो शक्ति दे कि मेरे तन की सभी इन्द्रियाँ आप का स्मरण करें।"

ऐसो कब करिहौ गोपाल ।
मनसा नाथ मनोरथ पुरन,हो प्रभुदीन दयाल ।
चितु चरननि निरअंतर अनुरत,रसना चरित रसाल ।
लोचन सजल प्रेम पुलकित तनु,कर अंजुलि दल माल ।
ऐसैं रहत लिखत झुकि - झुकि जमु,अपनो भयो माल ।
सूर सुजस रागी न डरत मनु,सुनि जातना कराल ।। [३६]

सूर कहते हैं, ' हे भगवान कृष्ण । आप तो मेरे मन के नाथ और मन की इच्छाओं को पूरा करने वाले दीनदयाल प्रभु हैं । इसलिए आप ऐसा करें कि मेरा चित्त आपके चरणों में निरन्तर लीन रहे और वाणि आपके सरस चरित का गान करती रहे । नेत्र निरन्तर आप में लीन रहें और वाणि आपके सरस चरित का गान करती रहे । नेत्रों में सदा भक्ति के आंसू रहें । शरीर प्रेम से रोमांचित रहे और हाथों की अंगुली में तुलसीदल और पुष्प की माला हो । इस प्रकार से जब मेरा जीवन होगा तो यमराज झुक-झुककर अपनी इच्छा से जो चाहें मेरे कर्मों का विवरण लिख लें ।' सूरदास कहते हैं ,' प्रभु । मैं, चाहे जैसा भी हूँ, छोटा या बड़ा,बुरा या भला,हूँ तो तुम्हारा ही हूँ । जब तुम्हारी शरण में मैं आ गया,तो अब तुम्हारा हो गया । इसलिए मेरी लज्जा या बड़ाई का उत्तरदायित्व तुम्हारे ही ऊपर है । तात्पर्य यह कि मैं बुरा काम करूँ या भला काम करूँ, उसका दोष या गुण आपको ही लगेगा,क्योंकि अब मैं तो हर प्रकार से आपका ही हो चुका ।

जैसे --

जो हम भले बुरे तौ तेरे ।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई,बिनती सुनि प्रभु मेरे ।।
सब तजि तुम सरलागति आयौ, निज कर चरन गहेरे ।
तुम प्रताप-बाल बदत न काहू,निडर भए घर चेरे ।।
और देव सब रंक भिखारी,त्यागे बहुत अनेरे ।
सूरदास प्रभु तुम्हारी कृपा तैं, पाये सुख जु घनेरे ।। [३७]

सूरदास जी कहते हैं," अब मैं सब कुछछोड़ कर तुम्हारी शरण में आ गया हूँ और मैंने अपने हाथों से बहुत ही कस कर तुम्हारे चरणों को पकड़ रखा है। तुम्हारे ही बल और प्रताप के भरोसे मैं अब किसी को कुछ नहीं गिनता और घर के सेवक की भाँति सबसे निर्भय हो गया हूँ। अन्य जितने देवता हैं, वे सब स्वयं भिखारी हैं -- आपके ही तेज से वे तेजस्वी हैं और आपके ही प्रसाद से प्रभुता सम्पन्न हैं अत: उन्हें व्यर्थ जान कर मैंने त्याग दिया है। अब तो मुझे आपकी ही कृपा का एकमात्र भरोसा है, इससे मुझे सुख भी बहुत प्राप्त हुआ है।"

अब तौ यहै बात मन मानी।
छाँड़ौ नाहिं स्याम - स्यामा की, बृन्दावन राजधानी।
भ्रम्यौ बहुत लघु धाम विलोकत, छन-भंगुर दुखदानी।
सर्वोपरि आनंद अखंडित, सूर - गरम लपिटानी।।[38]

सूरदास जी कहते हैं, हे प्रभु! " अब तो मैंने मन में यही बात धारण कर ली कि, मैं आपकी राजधानी वृन्दावन को कभी न छोड़ूगा। मैं छोटे-छोटे स्थानों में भटकता हुआ बहुत फिरता रहा, यह संसार क्षण में नष्ट होने वाला और दुखदायी है।" सूरदास कहते है," हे सर्व श्रेष्ठ अखंडित आनन्द प्रभु की भक्ति में हैं, मैं उन्ही के चरणों में लिपटा रहूँगा।" इसमें सूरदास जी की निजी आत्माभिव्यक्ति दिखाई देती है।

सूर ने कृष्ण से अपने जीव की अविद्या दूर करने के लिए मार्मिक प्रार्थना नीचे लिखे पद में व्यक्त की है --

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।
काम, क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नुपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल।

कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल ।। [३९]

सूरदास कहते हैं, " हे भगवान ! अब तक तो मैंने बहुत नाच किया । नाचने से तात्पर्य झूठा अभिनय करना होता है । मनुष्य माया के कारण संसार में झूठा नाट्य करता है । मैंने काम - क्रोध का लम्बा चोला पहना और गले में सांसारिक विषयों की माला डाली । सांसारिक भ्रम से मन भ्रमित होकर बुरी संगति में जा बैठा है । तृष्णा का स्वर हृदय के भीतर अनेक प्रकार से ताल देकर गूंज रहा है । मैंने कमर में माया का फेंटा बाँध रखा है । और लोभ का तिलक मस्तक पर लगाया है । मैंने सब प्रकार के सांसारिक कृत्यों की कला दिखला दी । जल, थल और काल की कोई याद मुझे नहीं रही ।" सूर कहते हैं, " हे नंद के लाडले कृष्ण ! आप मेरी सारी अज्ञानता को दूर कीजिए ।"

अपनी भगति दै भगवान ।
कोटी जो लालचु दिखावहु,नाहिनै रूचि आन ।
जा दिन तै जगि जनमु याकौ,इहै याकी रीति ।
विषै विषु हठि खातु डरत न,करत कछू अनीति ।

नाहिनौ काँचो कृपानिधि,करिहौ कहा रिसाइ ।
सूर तबहुँ न द्वार छाँडै, डारि हौ कढ़राइ ।। [४०]

सूरदास कहते हैं, " हे प्रभु ! आप मुझे भक्ति दे इसके बदले यदि आप करोड़ सांसारिक लालच दिखायें तो भी मैं और कुछ नहीं चाहता । जिस दिन से मैंने जन्म लिया है, मेरी रीति यही रही है कि मैं सांसारिक सुख रुपी विष को हठपूर्वक खाता रहा हूँ । अनीति के कार्यों को करते हुए कभी नहीं डरा । मैंने सांसारिक कामनाओं के साथ साधनाएँ की । मैंने संसार में बड़े कुकर्म किए जिसके कारण अनेक बार मैंने यमराज के कुएँ भर दिए । हमें तो यमराज के दूत उठा न सके । मेरे पाप के बोझ से वे भी थक गये । रही यह बात कि इतना पापी होते हुए भी अब मैं आपके

द्वारे खड़ा हूँ और बड़े मचलने वाले हठी बालक - सा हूँ। मुझे मारोगे तो भी मुझे मारे जाने का कोई भय नहीं। मैंने प्रतिज्ञा की है और मैं आपके द्वार पर पड़ा हूँ। अब मेरे प्राण की लाज रखना भी आपके हाथ ही है। मैं कच्चा नहीं हूँ, हट नहीं सकता आप कितना भी क्रोध करें।' सूरदास जी कहते हैं,' चाहें आप आप मुझे हाथ पकड़कर निकलवा दें फिर भी मैं आपका द्वार नहीं छोड़ूँगा।'

कार्पण्य याने दीनता प्रकट करना --

भक्त प्रभु के आगे अपनी निर्बलता खोल कर रख देता है, प्रभु की सर्वशक्तिमत्ता के सामने अपने कार्पण्य एवं दैन्य को प्रकट करता है। आत्म-निवेदन का यह आवश्यक अंग है, जैसे --

प्रभु हौं बड़ी बेर कौ ठाढ़ौ।
और पतित तुम जैसे तारे, तिनही मैं लिखिकाढ़ौ।।
जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरिकहत हौं तातैं।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं,हौं अब कहौ घटिकातैं ।।
कै प्रभु हारि मानि कै बैठहु, कै करौ बिरद सही।
सूर पतित जो झूठ कहत है,देखौ खोलि वही ।। ४१

सूरदास कहते हैं,' हे प्रभु ! मैं बड़ी देर से आपके दरवाजे पर खड़ा हूँ। अर्थात इस आशा से प्रतिक्षा कर रहा हूँ कि कदाचित मेरी ओर भी आपका ध्यान जाए और आप मेरा भी उध्दार कर दें। आपने बहुत से पतितों को तारा है,वैसा ही पतित मैं भी हूँ। अत: तारे जानेवाले की सूची में मेरा नाम भी लिख लें ,जिससे मैं भी भवसागर के पार हो जाऊँ। युग युग से आपका यही सुयश चला आ रहा है कि आप पतित पावन हैं। इसीलिए बार बार अपना उध्दार करने के लिए आपसे कह रहा हूँ। पाँच पतितों में मेरी भी जब गणना है और मैं किसी से घट कर भी नहीं हूँ, तब भी मेरा उध्दार नहीं हो रहा है,इस लाज से मैं मरा जा रहा हूँ। या तो आप हार मान कर बैठ जाइए या फिर अपने सुयश की रक्षा कीजिए और

मेरा उध्दार कीजिए यदि आपको मेरे पतित होने में सन्देह हो, तो आप अपनी बही खोलकर देख लीजिए उसमें सारा ब्योरा अपने आप मिल जायेगा ।"

प्रभु मेरे औगुन चित न धरौ ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारौ, अपने पनहि करौ ।।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परयौ ।
यह दुबिधा पारस नहि जानत, कंचन करत खरौ ।।
इक नदिया, इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ ।
जब मिलिकै दोऊ एक बरन भए, सुरसरि नाम परौ ।।
एक जीव, एक ब्रह्मा कहावत, सूर स्याम झगरौ ।
अबकी बेरि मोहि पार उतारौ, नहिं पन जात टरौ ।।[४२]

सूरदास जी कहते हैं, " हे प्रभु ! मेरे दोषों का, मेरे अपराधों का ख्याल मत कीजिए । आप तो समदर्शी हैं, बुरे - भले सब आपकी निगाह में एक से हैं । इसलिए भले ही मैं अपराधी हूँ, बुरा हूँ , लेकिन आप चाहें तो मेरा उध्दार कर सकते हैं, मुझे भवसागर से पार उतार सकते हैं । आप अपने प्रण का निर्वाह कीजिए । पारस पत्थर के लिए जैसे हर प्रकार का लोहा एक ही समान होता है, वह अपने स्पर्श से हर तरह के लोहे को, चाहे वह पूजा के काम में आता हो या व्याधों के यहाँ पशुओं की हत्या करने के काम में आता हो, खरा सोना बना देता है, वैसे ही आपकी कृपा मात्र से भले , बुरे सब का उध्दार हो सकता है । मतलब यह कि जब आपका यह स्वभाव ही है तो मेरे अपराधों की ओर ध्यान न देकर आप मेरा उध्दार कर दें ।"

पुन: सूरदास जी कहते हैं," जिस प्रकार गन्दे जल वाले नाले का जल बड़ी नदी में मिल कर स्वच्छ जल का रूप धारण कर, अन्तत: गंगा जल कहलाता है उसी प्रकार कल्मष युक्त यह जीव भी जब ब्रह्म में मिल जाता है, तो इसके सारे विकार मिट जाते हैं । इसलिए हे श्याम ! आपसे मेरा यही आग्रह है कि मैं चाहे जितना भी पापी, अपराधी हूँ, आप इस बार मेरा उध्दार कर दें । नहीं तो समदर्शी होने

की आपने जो प्रतिज्ञा कर रखी है, वह टूट जायेगी ।" कार्पण्य को आत्मनिवेदन का अंग माना जाता है ।

परवर्ती आचार्यों ने आत्म - निवेदन के सात विभाग किये हैं जिन्हें हम विनय भक्ति की भूमिका कह सकते हैं । ये सात भूमिकाएँ निम्नलिखित हैं --

१ दीनता
२ मानमर्षण
३ भयदर्शन
४ भर्त्सना
५ आश्वासन
६ मनोराज्य और
७ विचारणा ।

इन सात विभागों के उदाहरण इस प्रकार हैं ---

१ <u>दीनता</u> --

जैसें राखहु तैसें रहौं ।
जानत हो दुख - सुख जन के, मुख करि कहा कहौं ?
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि,कबहुक,भूख सहौं ।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महा गज, कबहुक भार बहौं ।
कमल - नयन, घन - श्याम - मनोहर,अनुचत भयौ रहौं ।
सूरदास - प्रभु भक्त - कृपानिधि,तुम्हरे चरन गहौं ।।[४३]

इस पद में सूर ने अपने प्रभु के समक्ष पूर्ण समर्पण एवं सेवकत्व का भाव निवेदित किया है । सूरदास जी कहते हैं," भक्त, जीवन की प्रत्येक स्थिति को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में सभी परिवर्तन प्रभु की इच्छा से प्रेरित होते हैं । उसकी दृष्टि अपने आराध्य का विश्वस्त सेवक बने रहने

में है। समर्पण भाव की कोमल अभिव्यक्ति इस पद में दिखाई देती है और इसमें सूर के भावुक भक्त हृदय की वास्तविक झलक मिलती है।

जौं हम भले बुरे तौ तेरे।
तुम्हें हमारी लाज-बड़ाई, बिनती सुनि प्रभु मेरे।।
सब तजि तुम सरनागति आयौ, निज कर चरण गहेरे।
तुम प्रताप - बल बदत न काहू, निडर भए घर चेरे।।
और देव सब रंक भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुम्हारी कृपा तैं : पाये सुख जु घनेरे।।[४४]

सूरदास कहते हैं, "हे प्रभु। मैं चाहे जैसा भी हूँ छोटा या बड़ा, बुरा या भला, हूँ तो तुम्हारा ही। जब तुम्हारी शरण में मैं आ गया तो अब तुम्हारा हो गया। इसलिए मेरी लज्जा या बड़ाई का उत्तरदायित्व तुम्हारे ही ऊपर है। इसलिए हे प्रभु। अब मैं सब कुछ छोड़ कर तुम्हारी शरण में आ गया हूँ और अपने हाथों से बहुत ही कस कर तुम्हारे चरणों को पकड़ रखता हूँ। तुम्हारे ही बल और प्रताप के भरोसे मैं अब किसी को कुछ नहीं गिनता और घर के सेवक की भाँति सब से निर्भय हो गया हूँ। अन्य जितने देवता हैं वे सब स्वयं भिखारी हैं आपके ही तेज से वे तेजस्वी हैं और आपके ही प्रसाद से प्रभुता - सम्पन्न हैं अत: उन्हें व्यर्थ जान कर मैंने त्याग दिया है। अब तो मुझे आपकी ही कृपा का एकमात्र भरोसा है, इससे मुझे सुख भी बहुत प्राप्त हुआ है।"

दीनता के इन पदों में सूरदास के भावुक भक्त हृदय की झाँकी मिलती है।

<u>मान - मर्षणा</u> --

इसमें अभिमान का त्याग और विनम्रता का वर्णन रहता है, जैसे ---

सबै दिन एक से नहिं जात ।
सुमिरन भजन लेहु करि हरि को, जो लगि तन कुसलात
कबहूँ कमला चपल पाइ कै, टेढ़ेइ टेढ़े जात ।
कबहूँक आइ परत दिन ऐसे, भजन को बिललात ।
बालापन खेलत ही गँवायो, तरुना पै अरसात ।
सूरदास स्वामी के सेवत, पायो परम पदु गात ।।[४५]

" सभी दिन एक से नहीं जाते । इसलिए जब तक शरीर में कुशलता है तब तक भगवान का सुमिरन और भजन कर लेना चाहिए । लक्ष्मी चंचल होती है, किसी के यहाँ टिकती नहीं, फिर भी कभी धन प्राप्त करने पर आदमी टेढा-मेढा चलता है अभिमान में भरा रहता है, किन्तु कभी ऐसे दिन आ पड़ते हैं कि मनुष्य भोजन के लिए भी भटकता फिरता है । बचपन की अवस्था तो खेल - खेल में खत्म हो जाती है । युवावस्था प्राप्त होने पर विषय - वासना में पड़कर मनुष्य आलसी रहता है और भगवान का भजन नहीं करता ।" सूरदास जी कहते हैं," प्रभु को सेवा करने पर ही शरीर को मोक्ष मिलता है ।"

आछो गात अकारथ गार्यो ।
करी न प्रीति कमल - लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हार्यो ।
निसि-दिन विषय-बिलासनि बिलसत, फूटि गई तब चार्यो ।
अब लाग्यो पछितान पाइ दुख, दीन, दर्द को मार्यो ।
कामी, कृपन, कुचील कुदरसन, को न कृपा करि तार्यो ।
तातैं कहत दयाल देव - मनि, काहैं सूर बिसार्यो ।।[४६]

सूरदास कहते हैं," मैंने तो यह सुन्दर मानव शरीर व्यर्थ में ही नष्ट कर दिया । कमल नेत्र वाले भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं किया तथा इस दुर्लभ मानव जीवन को मैंने व्यर्थ में ही समाप्त कर दिया, मैं तो रात - दिन सांसारिक विषय सुखों की आसक्ति में लीन रहा । उस समय मेरी चारों आँखे

फूट गई थी । अब दीन-हीन होकर भाग्य का मारा हुआ दु:खी होकर पश्चाताप करने लगा हूँ ।' इसलिए सूरदास कहते हैं, ' हे प्रभु ! आपने तो अनेक अपवित्र दर्शनवाले तथा मैले कुचिले को तारा है इसलिए कृपा करके हे दयालू प्रभु ! अब मेरा भी उध्दार कर लें ।'

भय - दर्शन --

इसमें भयावह वस्तुओं और दृश्यों के दर्शन करके अथवा अपने सम्मुख भय उपस्थित देखकर भक्त प्रभु की शरण जाता है, और अपनी भयभीत परिस्थिति का निवेदन करता है जैसे --

अब कैं राख लेहु भगवान ।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया, पारधी साध्यौ बान ।
जाके डर भाज्यौ चाहत हौं, ऊपर ढुक्यौ सचान ।
दुहूँ भाँति दुख भयौ कपोतहिं, कौन उबारै प्रान ।
सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी, करो छूटो संधान ।
सूरदास सर लग्यो सचानहिं जय - जय क्रिपानिधान ।।[४७]

' घोर संकट में पडा हुआ पक्षी प्रार्थना करता है कि हे भगवान ! इस बार इस संकट से बचा लीजिये । मैं अनाथ वृक्ष की शाखा पर बैठा हूँ । बधिक ने मेरे ऊपर बाण का सन्धान किया है । उसके भय से मैं भागना चाहता हूँ, किन्तु ऊपर बाज मेरे लिए ताक लगाए हुए हैं । दोनों ओर से प्राणों पर संकट आ पडा है , इसे मेरे प्राणों की रक्षा कौन करेगा ? ' इस प्रकार भगवान का स्मरण किया । स्मरण करते ही व्याध को साँप ने डँस लिया और पक्षी को मारने के लिए चढा बाण छूट गया और वह बाज को जा लगा । इसमें सूर ने पक्षी, बहेलिया और बाज के घटना प्रसंग की उद्भावना करते हुए अपने माध्यम से जीवात्मा को पक्षी के रूप में प्रस्तुत किया है और उसे चारों ओर से भय ग्रस्त दिखाया है ।

<u>भर्त्सना</u> --

इसमें मन को डाँट फटकार कर प्रभु की ओर उन्मुख किया जाता है । मन को इस अवस्था में पहुँचाये बिना आत्म-निवेदन हो ही नहीं सकता, जैसे --

रे मन मूरख जनम गँवायौ ।
करि अभिमान विषय-रस गीध्यौ, स्याम-सरन नहिं आयौ ।
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुन्दर देखि लुभायौ ।
चाखन लाग्यौ रूई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयौ ।
कहा होत अब के पछिताए पहिलै पाप कमायौ ।
कहत सूर भगवंत - भजन बिनु, सिर धुनि - धुनि पछतायौ ।।[४८]

" रे मन ! तूने व्यर्थ ही यह जन्म गँवा दिया अहंकार करके तू विषय वासना में लीन हो गया और श्रीकृष्ण की शरण में नहीं आया । यह संसार सुए द्वारा सेवित सेमल के समान है, जिसके सुन्दर फूलों को देखकर वह आकर्षित हुआ । किन्तु वह जब उसके फल का आस्वादन करने चला तो रूई उड़ने लगी और उसके हाथ कुछ भी नहीं लगा । अब पश्चाताप करने से क्या लाभ है ? अब तक तुम पाप ही कमाते रहे ।" सूरदास कहते हैं, " भगवान के भजन के बिना अब सिर पीट-पीट कर व्यर्थ पश्चाताप करना ही रह गया ।"

तजौ मन, हरि बिमुखनि कौ संग ।
जिनकै संग कुमति उपजति है, परत भजन मैं भंग ।

पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग ।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग ।।[४९]

सूरदास कहते हैं, " हे मन ! दुष्टों का साथ छोड़ दो । उनके साथ रहने से दुर्बुध्दि उत्पन्न होती है । तथा भगवान के भजन में बाधा पड़ती है । दुष्टों का स्वभाव बदलने से भी बदला नहीं जाता जैसे -- साँप को दूध पिलाने से क्या लाभ ?

इससे वह अपना विष नहीं छोडता । कौवे को कपूर चुगाने तथा कुत्ते को गंगा में नहलाने से क्या लाभ होता है ? वे तो पुन: अभक्ष्य भक्षण करते ही रहते हैं । गधे को सुगन्धित लेप करने तथा बन्दर के अंगों में आभूषण पहनाने से क्या लाभ होता है ? वह पुन: अपना वही ढंग अपनाते हैं । उसी प्रकार काले कम्बल पर दूसरा रंग नहीं चढता । उसी प्रकार दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों पर भी अच्छी बातों का प्रभाव नहीं पडता अत: उनका परित्याग कर देना चाहिए ।"

आश्वासन --

इसमें भक्त प्रभु की महत्ता पर आश्वस्त रहता है । और बडी से बडी विपत्ति में भी वह अपने साहस को नहीं छोडता । इसमें प्रमुख रूप से प्रभु की उदारता, शरणागत वत्सलता और रक्षा का विश्वास रहता है ।

प्रभु की उदारता --

प्रभु को देखौ एक सुभाइ ।
अति - गंभीर उदार उदधि हरि, जन सिरोमनि राइ ।
तिनका सौ अपने जनकौ गुन मानत मेरू - समान ।
सकुचि गनत अपराध - समुद्रहि बूँद तुल्य भगवान ।
बदन-प्रसन्न कमल सनमुख हो देखत हों हरि जैसे ।
विमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौ तो तैसे ।
भक्त विरह - कातर करूनामय, डोलत पाछै लागे ।
सूरदास ऐसे स्वामी को देहि पीठि सो अभागे ।। [50]

" प्रभु का एक स्वभाव विशेष रूप में दिखाई पडता है । वे सागर की भाँति गंभीर तथा उदार हैं । तथा ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ हैं । अपने भक्त के अल्प गुणों को वे सुमेरू पर्वत के समान मानते हैं । भक्त के बडे - बडे अपराधों को बूँद के समान छोटे मानते हैं । शरण जाने पर भगवान कमल की भाँति प्रसन्न - मुख दिखाई पडते हैं । तथा भक्त के विमुख हो जाने पर भी वे वैसे ही प्रसन्नमुख तथा

कृपालू रहते हैं। वे एक क्षण के लिए भी क्रोध नहीं करते। भक्त जब फिर उनकी ओर झुकता है तो वे पूर्ववत कृपालू हो जाते हैं। भक्त के विरह में व्याकुल भगवान उसके पीछे रहते हैं। तथा संकट के समय अपने भक्तों का रक्षण करते हैं। सूर का कहना है," ऐसे कृपालू स्वामी से मुख मोड़ने वाले बड़े ही अभागे होते हैं।"

सरन गए को को न उबार्यौ।
जब जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ संभार्यौ।

ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टार्यौ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग भूमि मैं कंस पछार्यौ।।[५१]

" भगवान ने अपनी शरण में आये हुए किसका उध्दार नहीं किया ? जब - जब भक्तों पर विपत्ति पड़ी, भगवान ने तत्क्षण सुदर्शन चक्र संभाला। भगवान अंबरीष पर प्रसन्न हुए तथा उन्होंने दुर्वासा के क्रोध का निवारण किया। ग्वालों के हित के लिए उन्होंने गोवर्धन पर्वत उठाकर इंद्र के गर्व को नष्ट किया भक्त प्रल्हाद पर कृपा करते हुए भगवान ने खंभे को फाड़कर हिरण्यकश्यप का संहार किया। कृपालू स्वामी ने नृसिंह रूप धारण कर क्षण मात्र में ही उसके हृदय को नखों से छिदीपी कर डाला। ग्राह द्वारा ग्रस्त गजराज के भगवान का नाम लेते ही भगवान ने उसके कष्टों का निवारण किया। रंगभूमि में कंस को मार डाला।" सूर का कहना है," श्याम के बिना ऐसे कौन कार्य करता है।"

जैसें तुम गज को पाऊँ छुडायौ।
अपने जन कौं दुखित जानि कै पाऊ पियादे धायौ।
जहाँ - जहाँ गाढ परी भक्तिनि कौं तहाँ तहाँ आपु जनाय्यौं।
भक्ति हेत प्रलहाद उबार्यौ, द्रौपदि - चीर बढायौ।
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं, नामदेव - घर छायौ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा,तिहिं दारिद्र नसायौ।।[५२]

" प्रभु तो भक्तों की रक्षा करने वाले तथा दु:ख को नष्ट करने वाले हैं। जैसे ही गज को ग्राह ने पकड़ा तो प्रभु ने उसे छुड़ाया। इस समय प्रभु अपने भक्तों प्रभु अपने भक्तों को दु:खी जानकर पैदल ही चले आये थे। जहाँ - जहाँ भक्तों पर पिवति वहाँ - वहाँ प्रकट होते हुए भक्तों के दुख दूर किये। प्रभु ने भक्ति के कारण ही प्रल्हाद की रक्षा की तथा द्रौपदी का चीर बढाया। भक्ति को जानकर ही भगवान विदुर के घर गये थे, तथा नामदेव का घर छाया। सुदामा निर्धन ब्राह्मण था उसका भी दारिद्र उन्होंने नष्ट किया।"

शरणागतवत्सलता --

राम भक्तवत्सल निज बानौं।
जाति, गोत, कुल नाम, गनत नहिं, रंक होई कै रानौं।

रसना एक अनेक स्याम - गुन कहँा लगि करौं बखानौं।
सूरदास - प्रभु की महिमा अति, साखी बेद पुरानौ।। [५३]

भक्तवत्सलता ही भगवान का निजी स्वरूप है, वे भक्त के जाति, गोत्र, कुल तथा नाम आदि का भेदभाव नहीं करते, न इस बात का वह रंक है या राजा। " हे प्रभु! शिव, ब्रह्मा आदि की कौन जाति है? मैं अज्ञानी कुछ नहीं जानता। अहंकार की भावना जहाँ होती है, वहाँ प्रभु का सानिध्य नहीं होता, तो ऐसे अहंकार की भावना को हम आश्रय क्यों दें? भक्त प्रल्हाद दैत्यवंश में उत्पन्न हुआ था, तथापि उसकी रक्षा के लिए भगवान स्तम्भ से प्रकट हुए।"

रक्षा का विश्वास --

जाको मनमोहन अंग करै
ताको केस खसै नहि सिर तै, जो जग बैर परै।

जाकाे बिरद है गर्व - प्रहरी,साे कैसे बिसरै ।
सूरदास भगवंत - भजन करि,सरन गए उबरै ।। [54]

सूरदास कहते हैं," जिसको भगवान कृष्ण अपना ले उसका एक बाल भी बाँका नहीं हाे सकता चाहे सारा संसार उसका वैरी हाे । भक्त प्रल्हाद पर हिरण्यकश्यप ने अनेक प्रहार किये, लेकिन प्रल्हाद उससे तनिक भी नहीं डरे । आज तक उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवजी आकाश में अटल है । द्रौपदी की लज्जा भगवान ने बचाई भले ही दुर्योधन ने उसका चीर हरना चाहा, लेकिन वस्त्रों की धारा इतनी बढी कि दुर्योधन का मान भंग हाे गया । इन्द्र ब्रज पर बडा ही क्रोधित हुआ पर कुछ भी न कर सका । गोवर्धन पहाड काे उंगली पर धारण करके कृष्ण ने ब्रज के लोगों की रक्षा कर ली ।" प्रभु का यश यही है कि वे भक्तों का रक्षण करने वाले हैं ।

मनोराज्य --

इसमें भक्त यह समझता है कि मुझे प्रभु ने अपना लिया है । इससे भक्त निर्द्वन्द्व हाे जाता है ,और अपने पावन मनोराज्य में विचरण करता है । नीचे लिखे पद इसी अवस्था के द्योतक हैं --

हमें नंद नंदन माेल लिए ।
जम के फंद काटि मुकराए,अभय अजाद किए ।
भाल तिलक स्त्रवननि तुलसीदल ,मैटे अंक लिए ।
मुड्याै मूंड कंठ बनमाला,मुद्रा चक्र दिए ।
सब काेऊ कहत गुलाम स्याम काे, सुनत सिरात हिए ।
सूरदास प्रभु और बडाे सुख जूठनि खाइ जिए ।। [55]

" हमें तो भगवान कृष्ण ने माेल ले रखा है । और मैं उनका गुलाम हूँ । अब मेरे यमराज के फंदे कट गये हैं । मैं निर्भय और आजाद हूँ । अब मेरे मस्तक पर

तिलक और कान में तुलसीदल है । अन्य सारे निशान मैंने मिटा दिए हैं । मैंने सिर का मुंडन करना दिया है, मेरे गले में बनमाला है, मुद्रा और चक्र मुझे मिले हैं । सभी लोग मुझे अब कृष्णा का दास कहते हैं । यह सुनकर मेरे हृदय को परम शान्ति मिलती है ।" सूरदास जो कहते हैं," सबसे बडा सुख तो मुझे यह है कि मैं प्रभु का जूठन खाकर जीता हूँ ।"

कहा कमी जाके राम धनी ।
मनसा-नाथ मनोरथ - पूरन, सुख - निधान जाकी मौज धनी ।
अर्थ,धर्म, अरू काम,मोक्ष फल, चारि पदारथ देत गनी ।

आनंद - मगन राम - गुन गावैं - दुख संताप की कटि तनी ।
सूर कहत जे भजत राम कौ,तिनसौं हरि सौं सदा बनी ।।[५६]

जिसके देने वाले भगवान धनी हैं, उसे किस बात की कमी है ? वे तो मन की इच्छा को पूर्ण करने वाले हैं, वे सुख के घर हैं । वहाँ सब प्रकार का आनन्द है । वे धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष चारों पदार्थों के देने वाले हैं । उनके सेवक तो इन्द्र जैसे हैं फिर बेचारे मनुष्य की क्या गिनती । उस कंजस के धन की गिनती ही क्या जो मेरी - मेरी करता है, न खाता है न खर्च करता है । वह तो उस सर्प की भाँति है जो मणि धारण करता है । पर न उसका उपयोग करता है और न औरों को देता है । व्यक्ति को चाहिए कि आनन्द में मग्न होकर भगवान राम को गावें, जिससे दु:ख और कष्टों के बंधन कट जायें ।" सूरदास जो कहते हैं," जो भगवान को भजते हैं, उनको भगवान सदा चाहते हैं ।"

<u>विचारणा</u> --

इसमें अपने पापों का स्मरण और पश्चाताप की भावनाएँ रहती हैं -जैसे --

पापों का स्मरण --

इसमें भक्त अपने दोषों, अपराधों अथवा कुत्सित कृत्यों पर ध्यान देता है। उदा --

> आछौ गात अकारथ गारयौ ।
> करी न प्रीति कमल - लोचन सों, जनम तृषा ज्यों हारयौ ।
> निसि-दिन विषय - बिलासनि बिलसत, फूटि गई तब चारयौ ।
> अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मारयौ ।
> कामी, कृपन, कुचील, कुदरसत, को न कृपा करि तारयौ ।
> तातैं कहत दयाल देव - मनि, काहैं सूर बिसारयौ ।। [५६]

सूरदास जी कहते हैं," मानव का यह उत्तम तन पाकर भी ऐ जीव। तूने इसे व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। जैसे जुआडी जुए के खेल में बाजी हार जाता है वैसे ही कमलनयन भगवान कृष्ण के साथ प्रेम न करके अर्थात उनकी आराधना न करके तथा विषय वासनाओं में फँस करके तू जीवन की यह बाजी हार गया। दिन - रात विषय - वासना में लीन रह कर तूने अपनी सभी दृष्टियाँ नष्ट कर लीं। और इसके बाद अब जब कि आँखें खुली हैं तो ऐ हतभाग्य। तू पछता रहा है। लेकिन यदि तू अब भी भगवान का पल्ला पकड ले, तो तेरा उध्दार हो जाय, क्योंकि भगवान ने कामी कृपण, पापी कुरूप किसको कृपा करके नहीं तारा ? इसलिए सूरदास कहते हैं," हे दयालू प्रभु। आपने ऐसे लोगों का उध्दार किया, तो मुझ अंधे को ही कैसे भूल गये।"

पश्चाताप --

इसमें भक्त की विशेष रूप से सत्कृत्यों पर दृष्टि रहती है, पर वह सम्पादित नहीं कर सकता। इन दोनों दशाओं में वह अपने मन में ही मन्थन करता रहता है। --

मोसम कौन कुटिल खल कामी ।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय,सब के अंतरजामी ।

पापी परम अधम,अपराधी,सब पतितनि मैं नामो ।
सूरदास प्रभु अधम - उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी ।।[58]

सूरदास कहते हैं," हे प्रभु मेरे । समान कुटिल, दुष्ट और कामो कौन होगा ? हे दयालू । आप तो सब के हृदय में बसने वाले हैं । आपसे क्या छिपा है ? जिस प्रभु ने मुझे शरीर दिया मैंने उसे ही भुला दिया मैं ऐसा नमक हराम हूँ । मै द्रोह से पूर्ण हूँ और सांसारिक सुखों के लिए निकृष्ट स्थलों पर इस प्रकार दौडता हूँ, जैसे गांव का सुअर सत्संगति की बात सुनकर । मुझे मन में आलस्य आता है, किन्तु सांसारिक सुखों में आराम मिलता है । दुनिया में जितने भी पापी, नीच, अपराधी और पतीत हैं, उन सब में सर्वाधिक पापी नीच अपराधी मैं ही हूँ । इसलिए हे भगवान । आप सर्व प्रथम मेरा उध्दार कीजिए ।

निष्कर्ष ---

सूरदास के विनय के पदों का स्वरूप देखने के बाद हम इस निष्कर्ष पर आ जाते है सूरदास जी के विनय के पदों के अन्तर्गत छ: प्रकार की प्रपत्ति अथवा शरणागति के दर्शन दिखाई देते हैं जैसे ---

१ भगवान के अनुकूल आचरण ।
२ भगवान के प्रतिकूल आचरण की निंदा ।
३ भगवान मेरा उध्दार करेंगे इस प्रकार की दृढ धारणा ।
४ भगवान को अपना रक्षक मानना ।
५ आत्म समर्पन की भावना और
६ कार्पण्य,याने दीनता प्रकट करना ।

भगवान के अनुकूल गुणों के आचरण में भक्त अपने इष्टदेव के अनुकूल गुणों को धारण करने का संकल्प करता है। तथा भगवान के प्रतिकूल आचरण में भक्त अपने अध्यात्मिक उत्थान के लिए जो पदार्थ अच्छा नहीं उसका परित्याग कर देता है। भगवान मेरा उध्दार करेंगे इसके अन्तर्गत भक्त यह आशा प्रकट करता है कि मेरा इष्टदेव मेरा उध्दार अवश्य करेंगे। मेरा कोई अनिष्ट नहीं होने देंगे। भक्त भगवान को अपने रक्षक के रूप में मानता है, उस पर चाहे जैसा संकट हो वह यह आशा रखता है कि भगवान उनकी रक्षा अवश्य करेंगे ही।

प्रभु के उपर्युक्त गुणगान को देखकर भक्त प्रभु के पास शरण जाता है, और आप को भगवान के हाथों में समर्पित करता है, जिसे आत्म-समर्पण की भावना मानी जाती है। इसमें भक्त तन,मन,धन सभी भगवान को अर्पण करता है और अंत में प्रभु के आगे अपनी निर्बलता खोल कर रख देता तथा प्रभु को सर्व - शक्तिमता के सामने अपने कार्पण्य एवं दीनता को प्रकट करता है, इसे आत्म - निवेदन का आवश्यक अंग माना जाता है।

आत्म-निवेदन के सात विभाग हैं, जिन्हे हम विनय भक्ति की भूमिका कहते हैं, बिना भूमिका से विनय परिपूर्ण नहीं होती। इसलिए इस भूमिका को विशेष महत्वपूर्ण माना जाता है --

१ दीनता
२ मानमर्षान
३ भय - दर्शन
४ भर्त्सना
५ मनोराज्य
६ आवश्वासन
७ विचारणा।

दीनता, में भक्त प्रभु के सामने अपनी निर्बलता खोल कर रख देता है, और अपनी दीनता प्रकट करता है। मानमर्षन, में अभिमान का त्याग और विनम्रता का वर्णन रहता है। तथा भय-दर्शन, में भयावह वस्तुओं और दृश्यों के दर्शन करके अथवा अपने सम्मुख भय उपस्थित देखकर भक्त प्रभु की शरण जाता है। भर्त्सना, में भक्त अपने मन को डाँट फटकार कर प्रभु की ओर उन्मुख करता है। मनोराज्य, में भक्त यह समझता है कि प्रभु ने उसे अपना लिया है, तथा वह निर्द्वन्द्व हो जाता है और पवन मनोराज्य में विचरण करता है। आश्वासन में भक्त प्रभु के महनीय महत्ता पर आश्वस्त हो जाता है।

सूरदास जी के विनय के पदों में इन भूमिकाओं का तथा प्रपंच का हू-ब-हू चित्रण दिखाई देता है। इनके हर एक पद में भगवान के प्रति अटल भक्ति और पूर्ण प्रेम प्रकट होता है।

संदर्भ सूची

१ हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ
डॉ.शर्मा शिवकुमार
पृष्ट क्र.२६३
अशोक प्रकाशन,नई सड़क दिल्ली ६
संस्करण सन १९८६

२ `सूरसागर` खण्ड पहला
संपादक वाजपेयी नंददुलारे
प्रकाशक,नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी
चतुर्थ संस्करण संवत २०२१
पद क्र.३४०,पृष्ट क्र.११२

३ - वही - पद क्र.३३९,पृ.क्र.११२

४ - वही - पद क्र.३३८, पृष्ट क्र.११३

५ - वही - पद क्र.३६५, पृष्ट क्र.११२

६ - वही - पद क्र.११, पृ.क्र.४

७ - वही - पद क्र.१२, पृ.क्र.५

८ - वही - पद क्र.१३, पृ.क्र.५

९ - वही - पद क्र.१९, पृ.क्र.७

१० - वही - पद क्र.२०, पृ.क्र.७

११ - वही - पद क्र.३४९, पृ.क्र.११६

१२ ' सूरसागर ' खण्ड पहला
संपादक वाजपेयी नंददुलारे
प्रकाशक,नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी
चतुर्थ संस्करण संवत २०२१
पद क्र.३३७,पृ.क्र.११२

१३ - वही - पद क्र.३३५,पृ.क्र.१११

१४ - वही - पद क्र.३१७, पृ.क्र.१०४

१५ - वही - पद क्र.३४०,पृ.क्र.११२

१६ - वही - पद क्र.३२६, पृ.क्र.१०८

१७ - वही - पद क्र.२९२,पृ.क्र.९७

१८ - वही - पद क्र.३५६,पृ.क्र.११९

१९ - वही - पद क्र. ३५८, पृ.क्र. १२०

२० - वही - पद क्र.३२९, पृ.क्र.१०९

२१ - वही - पद क्र.४२,पृ.क्र.१५

२२ - वही - पद क्र.१४,पृ.क्र.५

२३ - वही - पद क्र.२२, पृ.क्र.८

२४ - वही - पद क्र.१२, पृ.क्र.५

२५ - वही - पद क्र.२२०, पृ.क्र.७२

२६ - वही - पद क्र.१११, पृ.क्र.३६

२७ भारतीय साधना और सूर साहित्य
लेखक डॉ.शर्मा मुंशीराम
प्रकाशक,आचार्य शुक्ल साधना सदन
१९।४४ पटाकापुर कानपुर
प्रथम बार २०१०

२८ - वही - पद क्र.३९,पृ.क्र.१४

२९ - वही - पद क्र.३७,पृ.क्र.१३

३० - वही - पद क्र.३०,पृ.क्र.११

३१ - वही - पद क्र.१६,पृ.क्र.६

३२ - वही - पद क्र.९,पृ.क्र.४

३३ - वही - पद क्र.९७, पृ.क्र.३१

३४ - वही - पद क्र.१६८,पृ.क्र.५५

३५ - वही - पद क्र.५१, पृ.क्र.१८

३६ - वही - पद क्र.१८६,पृ.क्र.६२

३७ - वही - पद क्र.१७०,पृ.क्र.५५

३८ - वही - पद क्र.८७, पृ.क्र.२८

३९ - वही - पद क्र.१५३, पृ.क्र.५१

४० - वही - पद क्र.१०६, पृ.क्र.३४

४१ - वही - पद क्र.१३७, पृ.क्र.४५

४२ - वही - पद क्र.२२०, पृ.क्र.७२

४३ भारतीय साधना और सूर साहित्य
लेखक डॉ.शर्मा मुंशीराम
प्रकाशक,आचार्य शुक्ल साधना सदन
१९ । ४४ पटाकापुर कानपुर
प्रथम बार २०१०
पद क्र.१६१,पृ.क्र.५३

४४ - वही - पद क्र.१७० ,पृ.क्र.५५

४५ - वही - पद क्र.३६५,पृ.क्र.१२१

४६ - वही - पद क्र.१०१,पृ.क्र.३२

४७ - वही - पद क्र.९७,पृ.क्र.३१

४८ - वही - पद क्र.३३५,पृ.क्र.१११

४९ - वही - पद क्र.३३२, पृ.क्र.११०

५० - वही - पद क्र.८, पृ.क्र.३

५१ - वही - पद क्र.१४,पृ.क्र.५

५२ - वही - पद क्र.२०,पृ.क्र.७

५३ - वही - पद क्र.११, पृ.क्र.४

५४ - वही - पद क्र.३७,पृ.क्र.१३

५५ - वही - पद क्र.१७१, पृ.क्र.५६

५६ - वही - पद क्र.३९, पृ.क्र.१४

५७ भारतीय साधना और सूर साहित्य
लेखक डॉ.शर्मा मुंशीराम
प्रकाशक, आचार्य शुक्ल साधना सदन
१९।४४ पटाकापुर कानपुर
प्रथम बार २०१०
पद क्र.१०१, पृ.क्र.३२

५८ - वही - पद क्र.१४८, पृ.क्र.४९ ।